THE TIMES OF INDIA

Date:19-03-24

Meds For All

Generics help lower *Indian healthcare costs. But govts still need to intervene, smartly*

TOI Editorial

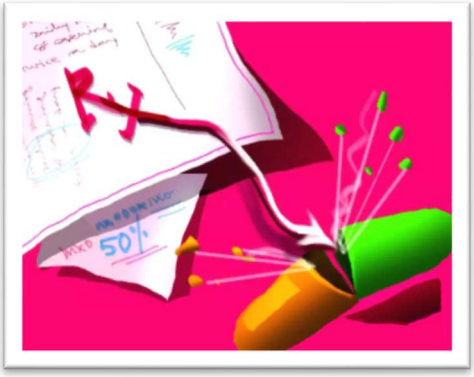

The cost of treating sickle cell anemia in India is on the verge of crashing. Hydroxyurea, a line of treatment, will now cost less than 1% of current import price. This is on account of a domestic manufacturer announcing it will supply vials at the new price to govt.

Healthcare costs are a source of economic pressure on most Indian families. It's led to govt intervention to improve access to medicines and provide insurance cover to cover emergencies.

Insurance's limitations | GOI and states have been the largest combined buyers of group insurance. It's an important safety net for vulnerable households. But its limitation is that it kicks in only in the case of hospitalisation. Medical expenses that don't require hospitalisation put immense strain on household budgets.

Costly medicines | National Health Accounts estimates for 2019-20 showed that out-of-pocket expenses make up ₹47 for every ₹100 spent on total healthcare expenditure. This is a high burden on households, by global standards. Moreover, over half of OOPE is on account of medicines. Getting a grip on the price of medicines is the key to reducing pressure on household budgets.

Interventions aplenty | GOI intervenes in the market to keep a check on the price of essential medicines. It has a list of 388 medicines, including stents, where it fixes the maximum price to ensure affordability. Efficacy of govt intervention depends on strategy. Mere price caps don't guarantee accessibility.

Lessons from states | States in India play a critical role in healthcare. In terms of current health expenditure in 2019-20, state govts contributed 20%. After individual households, it's states that spent the most on health.

Big buyer's impact | Some states have tried to use scale as a way to procure essential medicines at a low cost. An effective example is TN's decision to set up a public corporation in 1995 to procure medicines while retaining quality control. Distribution is decentralised. The basics of this model have been replicated with promising results in terms of access and affordability.

This approach is also useful to treat neglected areas such as snake bite fatalities where the low economic power of most victims doesn't add up to adequate demand for investment. Pooled demand, backed by offtake, will boost domestic industry and save lives.

THE ECONOMIC TIMES

Date:19-03-24

Knowledge Economy Means Student Safety

ET Editorials

Reputation matters. What happened last week when five students from several African countries, Afghanistan and Uzbekistan were reportedly beaten up inside Gujarat University for allegedly offering namaz may be an unfortunate flash in the pan. But the way foreigners make a snap judgement of a country based on their first experiences after stepping out of an airport, countries, too, leave a lingering impression by how foreign guests are treated on their institutions and campuses. So far, five perps have been arrested. MEA is in touch with the state government, and has promised strict action against all attackers. This is welcome and necessary.

India aims to enrol half a million international students in higher education by 2047 as part of its 'Study in India' programme. While quality of education matters, so does safety of students. Racist/communal attacks like the one in Gujarat hamper India's plan to be a knowledge economy. It also nixes deeper engagement that GoI is trying to craft with countries in Africa, Central and Western Asia. Indian students also benefit from having persons from different cultures in their midst. This provides them achance to know the world and make it their home one day.

The same way India expects its scholars to be treated with respect abroad, and campuses having a zero-tolerance for racist attacks in, say, the US or Australia, it, too, should be intolerant of racism and communalism in its learning centres. Being occasional victims must provide no excuse to provide room to be occasional perpetrators. Ensuring safe, open and diverse education campuses is central to liberal societies, especially those aspiring to be seen as 'developed'. Every university administration must ensure that everystudent is safe.

जनसत्ता

Date:19-03-24

सौहार्द के बजाय

संपादकीय

गुजरात विश्वविद्यालय के परिसर में नमाज पढ़ने को मुद्दा बना कर कुछ विदेशी छात्रों पर जिस तरह हमला किया गया, वह हर लिहाज से अनुचित है। इससे देश की छवि पर भी नकारात्मक असर पड़ा है। राहत की बात यह है कि इस मामले को सरकार ने गंभीरता से लिया और आरोपियों के खिलाफ सख्ती बरती है। मगर यह चिंता की बात है कि पढ़ाई-लिखाई के परिसरों में एक तरह की अराजकता पसर रही है और वह सभी के लिए बेहद नुकसानदेह है।

गौरतलब है कि शनिवार को विश्वविद्यालय परिसर में कुछ विदेशी छात्र नमाज पढ़ रहे थे कि वहां अचानक बीस-पच्चीस लोगों का समूह पहुंच गया और विवाद के बाद उन पर हमला कर दिया। इसमें कुछ छात्र घायल हो गए। हैरानी है कि ऐसी संवेदनशील परिस्थितियों में हंगामा करने वालों को रोकने और जरूरी कानूनी कार्रवाई को लेकर पुलिस अक्सर लापरवाही बरतती है। हालांकि अब इस मामले में आरोपियों के खिलाफ पुलिस सख्त दिख रही है।

ऐसे मामलों में अराजक तत्त्वों के खिलाफ सख्ती इसलिए भी जरूरी है कि ऐसे लोग इस बात की भी फिक्र नहीं करते कि उनकी हरकतों से दुनिया में भारत को लेकर कैसा संदेश जाएगा। एक ओर हमारे देश में 'अतिथि देवो भव' और 'वसुधैव कुटुंबकम' का नारा दिया जाता है, दूसरी ओर उपद्रवी तत्त्वों की बेलगाम हरकतों से ऐसे प्रयासों को गंभीर चोट पहुंचती है। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि दुनिया के बहुत सारे देशों से अलग-अलग धर्मों में विश्वास रखने वाले विद्यार्थी भारत के उच्च शैक्षणिक संस्थानों में पढ़ाई करने आते हैं तो इसकी वजह भारत में पढ़ाई-लिखाई के बेहतर माहौल के साथ-साथ सौहार्द और सहिष्णुता की संस्कृति की मजबूत बुनियाद रही है। मगर संकीर्ण मानसिकता की वजह से अगर किसी अन्य धर्म के छात्रों पर हमले किए जाते हैं, उन्हें बाधित किया जाता है तो यह न सिर्फ कानून व्यवस्था का मसला है, बल्कि ऐसी घटनाओं से देश के बारे में गलत संदेश जाएगा। इसलिए उम्मीद है कि इस मामले में पुलिस ने जैसी सख्ती दिखाई है, उसे अंजाम तक पहुंचाया जाएगा, ताकि देश के बारे में नकारात्मक धारणा को बल न मिले।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:19-03-24

चुनौतियों के बीच चुनाव एक मिसाल

विभूती नारायण राय, (पूर्व आईपीएस अधिकारी)

सोलह मार्च 2024 को 18वीं लोकसभा के लिए भारत के केंद्रीय निर्वाचन आयोग द्वारा चुनाव की तारीखें घोषित किए जाने के साथ ही, विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र (नब्बे करोड़ से अधिक मतदाताओं वाले) में संघर्ष की रणभेरी बज उठी है। 4 जून की देर रात तक या उसके भी बाद, जब तक मतगणना समाप्त नहीं हो जाएगी, यह संघर्ष पूरी शिद्दत के साथ चलता रहेगा। इसमें रहस्य, रोमांच, उत्सुकता और आशा-निराशा का द्वंद्व तब तक समाप्त नहीं होगा, जब तक 543 सीटों के लिए लड़ने वाले उम्मीदवारों के भाग्य का फैसला नहीं हो जाता।

अपनी भौगोलिक, भाषिक और सांस्कृतिक विविधताओं के चलते भारतीय चुनाव दुनिया भर के पर्यवेक्षकों के लिए हमेशा उत्सुकता के विषय रहे हैं। खास तौर से पश्चिम के राजनीतिक पंडित तो शुरू से ही भारत मे चुनावों की सफलता और निष्पक्षता को लेकर सशंकित रहे हैं। ब्रिटिश राजनेता चर्चिल शांतिपूर्ण तरीकों से अपनी सरकारें चुनने को लेकर भारतीय क्षमता के प्रति इतना आशंकित था कि वह मानता था कि अंग्रेजों के जाते ही यहां खून की बारिशें होंगी, पर ऐसा कुछ हुआ नहीं। देश के पहले निर्वाचन आयुक्त सुकुमार सेन ने पहला आम चुनाव जल्दी कराने की प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की जिद पूरा करने के रास्ते में जिन बाधाओं का जिक्र किया था, उनमें से एक बाधा का उल्लेख ही उनके सामने पहाड़ की तरह खड़ी समस्याओं को समझने में मददगार होगा।

चुनाव के लिए सबसे जरूरी मतदाता सूची की तैयारी को लेकर निर्वाचन आयोग की समझ तब गड़बड़ा गई, जब उन्होंने पाया कि एक क्षेत्र में कई सौ महिलाओं ने अपने पति का एक ही नाम लिखवाया था। इसके पीछे शिक्षा के अभाव के साथ-साथ वह सामाजिक परंपरा भी थी, जिसके तहत महिलाएं अपने पतियों का नाम नहीं लेती थीं। एक ने पति का नाम पूछने पर किसी प्राकृतिक अवयव की तरफ इशारा किया और फिर बाद में आने वाली सभी सिर्फ वही के इशारे में सिर हिलाती गईं। दुर्गम भौगोलिक इलाकों वाले इतने विशाल देश में मतदान केंद्रों तक चुनाव कर्मियों को अपने साजो-सामान के साथ पहुंचाना, उनकी सुरक्षा का इंतजाम करना और फिर चुनाव समाप्त करा कर उन्हें वापस मुख्यालय लाना कितनी कठिन परीक्षा रही होगी, इसका तो आज अंदाज ही लगाया जा सकता है। यह एक बड़ी उपलब्धि मानी जाएगी कि सतरह लोकसभाएं इस प्रक्रिया से चुनी गई हैं और यह भी कम उल्लेखनीय नहीं है कि हर चुनाव के बाद उत्तरोत्तर हिंसा की घटनाएं कम होती गईं। कुछ अपवादों को छोड़ दें, तो आम तौर से चुनावी नतीजों को सभी पक्षों ने स्वीकार भी किया है।

आठ दशकों में पसरे इस चुनावी सफर की कोई भी कहानी अधूरी ही रह जाएगी, यदि भारतीय निर्वाचन आयोग का उल्लेख न किया जाए। पहले निर्वाचन आयुक्त सुकुमार सेन को चुनकर नेहरू जी लाए थे और अपनी सूझबूझ, मेहनत के बल पर उन्होंने एक ऐसी नींव डाली, जिसके बल पर वर्षों तक यह संस्था काम करती रही। स्वातंत्र्योत्तर भारत के शुरुआती दो दशक स्वप्नजीवी आदर्शों के दशक थे, पर साठोत्तरी भारत की कहानी सपनों से मोहभंग की कहानी है और इसके बहुत से असरात में से एक जीवन के हर क्षेत्र में बढ़ती हिंसा केरूप में दिखता है। चुनाव भी क्रमश: बाहुबल और धनबल का खेल होते चले गए। इनके लिए बदलते मूल्यों के साथ अक्षम और निष्क्रिय चुनाव आयोग मुख्य रूप से जिम्मेदार रहा। आयोग आमतौर से सत्ताधारी दलों की धांधलियों पर अपनी आंखें मूंद लेता था।

निराशा के इस घटाटोप में अचानक एक ऐसे देवदूत का मंच पर प्रवेश हुआ, जो नौकरशाही में अपने प्रदर्शन से बहुत प्रभावित नहीं कर पाया था, पर एक सांविधानिक पद पर बैठते ही उसने एक मृतप्राय संस्था को प्रासंगिक बना दिया। वह व्यक्ति थे टीएन शेषन (1990-96)। बड़बोले, उतावले और अतिरेकी शेषन ने जो जबरदस्त सुधार चुनावी प्रक्रिया में किए, उनसे दूरगामी परिणाम निकले। यह कहना तो सरलीकरण होगा कि शेषन के सुधारों के बाद चुनावों में बाहु और धन की भूमिका खत्म हो गई, पर यह जरूर हुआ कि खुलेआम बूथ लूटने और पैसा बांटने के बेशर्म दृश्य अब पहले जैसे नहीं दिखते। दलों के साथ सरकारी मशीनीरी में आयोग का भय भी बैठा, पर दुर्भाग्य से ये परिवर्तन व्यक्ति केंद्रित ही साबित हुए। तीन दशकों बाद धीरे-धीरे फिर चुनाव आयोग की भूमिका एक पक्षधर रेफरी की बनती जा रही है। यही कारण है कि शेषन और लिंगदोह जैसे आयुक्तों को छोड़ दें, तो शायद ही कोई जनता की स्मृति में बस पाया ।

चुनाव पुलिस और दूसरे सुरक्षा बलों के सदस्यों के लिए उबाऊ और थका देने वाली प्रक्रिया के साथ उनकी साख के लिए एक गंभीर चुनौती की तरह आते हैं। अब चुनाव कई महीनों में फैले सात-आठ चरणों में समाप्त होते हैं। इस प्रक्रिया में जवान यात्राओं में बुरी तरह से थक जाते हैं और बाद के चरणों में उनके मनोबल और क्षमता पर इसका प्रतिकूल असर साफ दिखता है। मगर लंबी अवधि में फैले चुनावों का फायदा यह होता है कि मतदान केंद्रों पर अधिक बल उपलब्ध हो जाता है, जिसके कारण अब बूथ लूटने जैसी घटनाएं अतीत की चीज बन गई हैं। अब मतदाताओं को बूथ पर नहीं, वरन उनके गांवों, कस्बों या रास्तों में आतंकित किया जाता है। मुझे याद है कि एक जिले के पुलिस अधीक्षक के रूप में जब मैंने अपने करियर के पहले आम चुनाव में पुलिस प्रबंध किया था, तब मेरे जिले में सभी मतदान केंद्रों पर तैनाती के लिए एक-एक पुलिस कांस्टेबल भी उपलब्ध नहीं था, उनकी कमी होमगार्डों और चौकीदारों से पूरी करनी पड़ी थी। आज स्थिति बहुत बदल चुकी है, आज अगर बूथ पर गड़बड़ी होती है, तो उसका साफ मतलब तंत्र की मिलीभगत ही अधिक है।

चुनावों के लिए जरूरी समता या समानता भरे मैदान का हमारे देश में सतरह लोकसभा चुनावों के बाद भी अभाव दिखता है। सत्ताधारी पार्टी दौड़ शुरू होने के पहले ही आगे खड़ी हो जाती है। चुनावी बॉन्ड की जानकारियों या निर्वाचन आयोग के फैसलों से भी यह स्पष्ट है। इन सबके बावजूद इसे भारतीय मतदाता की प्रौढ़ता ही कहेंगे कि सारी गड़बड़ियों के बावजूद उसने अनेक बार सत्तारूढ़ पार्टियों को अपने मतदान के अधिकार से अपदस्थ किया है। आपातकाल के बाद का चुनाव इसका बड़ा उदाहरण है।

Date:19-03-24

रूस में व्लादिमीर पुतिन की पांचवीं जीत के मायने

शशांक, (पूर्व विदेश सचिव)

रूस के राष्ट्रपति-चुनाव में एक बार फिर व्लादिमीर पुतिन को जीत मिली है। यह अस्वाभाविक भी नहीं है। चुनाव के पहले से कयास यही थे कि उनको कोई खास प्रतिरोध नहीं मिलेगा। वैसा ही हुआ है। करीब 87 फीसदी मत-प्रतिशत हासिल करके पुतिन अगले छह साल के लिए फिर से क्रेमलिन में पहुंच गए हैं। दिसंबर, 1999 के बाद से राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री के रूप में रूसी सत्ता के केंद्र में रहने वाले पुतिन इस बार कहीं अधिक मजबूत बनकर उभरे हैं। स्थिति यह है कि यूक्रेनी दावा वाले इलाकों में, जहां पर रूसी आबादी अधिक है, वहां भी चुनाव में उन्हें जीत मिली है।

यह चुनाव बताता है कि यूक्रेन युद्ध पर रूसी मतदाता पुतिन की नीति को सही मान रहे हैं। यह युद्ध चुनाव में एक बड़ा मुद्दा था। यही कारण है कि चुनाव की पूर्व-संध्या पर लोगों को संबोधित करते हुए पुतिन ने यह उम्मीद जताई थी कि लोग उनके द्वारा किए जा रहे प्रयासों को समझेंगे और चुनौतियों से पार पाने के लिए कहीं अधिक एकजुट और आत्मविश्वासी बनकर उनके पक्ष में मत डालेंगे। अब जबकि चुनाव का परिणाम आ गया है, तो हो सकता है कि वह अपने कुछ वरिष्ठ सैन्य अधिकारियों को बदल दें, ताकि युद्ध को आखिरी चरण में ले जाया जा सके। बेशक, चुनाव जीतने के बाद अपने पहले संबोधन में उन्होंने तीसरे महायुद्ध की आशंका जताई है, लेकिन कम से कम अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव तक वह इस ज्वाला को शायद ही तेज करेंगे। रूस के लिए अमेरिकी चुनाव कितना अहम होता है, इसका

एहसास इसी से कर सकते हैं कि पहले के अमेरिकी चुनाव में मास्को के हस्तक्षेप के आरोप उछले थे। हालांकि, इस बार पुतिन ने एक साक्षात्कार में स्पष्ट कहा है कि अमेरिकी चुनाव के नतीजों में उनकी कोई रुचि नहीं। फिर भी, माना यही जाना चाहिए कि अमेरिका की दशा-दिशा देखने के बाद ही रूस अगला कोई बड़ा कदम उठाएगा। हां, इस बीच पुतिन ऐसी नीति जरूर अपना सकते हैं कि यदि यूक्रेन आगे बढ़ता है, तो रूस अधिक आक्रामक होकर जवाब दे सके।

पुतिन की सरपरस्ती में रूस ने खुद को कितना बदला है, इसके लिए मैं आपको पिछली सदी के आखिरी दशक में ले चलता हूं। मैं उन दिनों सेंट पीटर्सबर्ग में था। तब तक यूरोपीय संघ अस्तित्व में आ गया था, और एक तरह से वह खुद को तीसरा ध्रुव बनाने की कोशिशों में जुटा हुआ था। उधर, सोवियत संघ के पतन के बाद रूस दूसरे ध्रुव के रूप में अपनी दावेदारी मजबूत कर रहा था। उसकी मंशा यूरोपीय देशों के साथ संस्थागत रूप से जुड़ने की थी। यह वही दौर था, जब व्लादिमीर पुतिन ने पहली बार रूस की सत्ता संभाली थी। पुतिन की ताजपोशी के बाद रूस की नीति में एक बड़ा बदलाव यह आया कि उसने पूरब और पश्चिम, दोनों को देखना शुरू किया। इसका उसे फायदा भी मिला है। हालांकि, अब उसके लिए बीच का यह रास्ता करीब-करीब बंद हो चुका है। रूस भले आज भी यूरोपीय देशों को गैस बेच रहा है, पर यूक्रेन संकट के कारण उसकी आपूर्ति शृंखला प्रभावित हुई है और पश्चिमी यूरोप की भी उस पर निर्भरता कम हुई है। पुतिन को अपने नए कार्यकाल में इस चुनौती से भी पार पाना होगा।

वैसे, भारत भी रूस के लिए काफी अहमियत रखता है। हमने यह देखा है कि किस तरह से रूस और यूक्रेन के नेताओं से बातचीत करके हमारे प्रधानमंत्री ने शांति बनाने का प्रयास किया था। हालांकि, ईरान, चीन और उत्तर कोरिया से मास्को के रिश्ते बेहतर बन रहे हैं, लेकिन ये ऐसे देश हैं, जो खुद प्रतिबंधित होते रहे हैं। ऐसे में, भारत चाहे तो रूस से अपने आर्थिक संबंध बनाए रखते हुए बुनियादी ढांचे के विकास में उसकी मदद ले सकता है। इसके लिए हमें भारत-मध्य पूर्व-यूरोप आर्थिक गलियारे पर विशेष ध्यान देना चाहिए, जिसके तहत रेलमार्ग, समुद्री मार्ग और सड़क मार्ग, तीनों का विकास करना अनिवार्य है। इजरायल-हमास युद्ध के कारण इसमें कुछ सुस्ती आई है, लेकिन लाल सागर और भूमध्य सागर को जोड़ने वाली स्वेज नहर पर प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण हमें अपने रास्ते तैयार करने ही होंगे। हमें अपने हितों को तवज्जो देते हुए कूटनीतिक पहल करनी होगी।